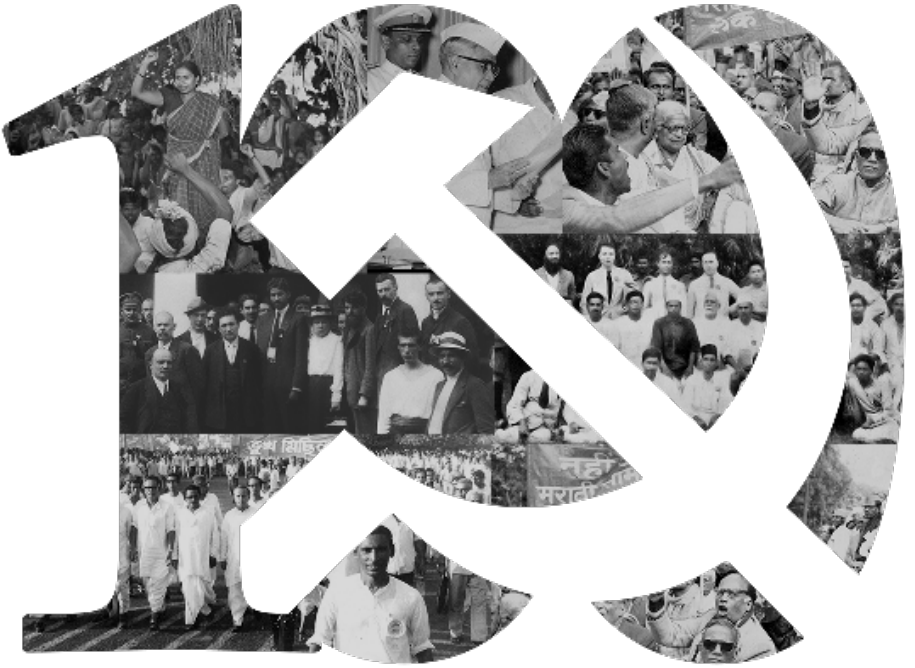

भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के सौ साल

डोजियर नं. 32
ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान
सितम्बर 2020

भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के सौ साल

डोजियर नं. 32 ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान
सितम्बर 2020

17 अक्टूबर 2020 को भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन निरंकुशता, अत्याचार और शोषण के खिलाफ अपने साहसिक प्रतिरोध के सौ साल पूरे कर लेगा। समतामूलक और एक सच्चे लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के सपने को साकार करने के लिए इस एक सदी के दौरान भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के लाखों क्रांतिकारियों ने अपने जान की कुर्बानी दी है। इस रास्ते पर आगे बढ़ते हुए हजारों कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं ने अपने जान की बाजी लगाई है और राज्य के दमन, हिंसा और उनको खत्म करने की अंतहीन कोशिशों के बावजूद इस सपने और संघर्ष को लेकर लगातार आगे बढ़ रहे हैं।

अपने स्वार्थहीन कामों की बदौलत कम्युनिस्टों ने समाज में आमूलचूल बदलाव लाने के इस अभियान में करोड़ों लोगों को जोड़ा है। सभी वंचित तबकों, शोषितों और दबे–कुचले वर्गों के रहने के लिए समाज को एक बेहतर जगह बनाने के लिए उन्होंने विभाजनकरी साम्प्रदायिकता और जातिगत भेदभाव के खिलाफ लड़ाईयाँ लड़ीं, अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए मजदूरों और किसानों को संगठित किया और लोगों की चेतना को प्रगतिशील बनाने के काम में लगे रहे। कम्यूनिस्ट आंदोलन इस बात से अच्छी तरह वाकिफ है कि मानव का मानव द्वारा होने वाले शोषण का खात्मा एक समाजवादी समाज की स्थापना करके और उसको साम्यवाद में तब्दील करके ही किया जा सकता है। वर्तमान समय में मानवता जिस तरह के संकट का सामना कर रही है उसके बीच भी इस मकसद के लिए लड़ाई पुरजोर तरीके से जारी है।

भारतीय कम्युनिस्ट देशभक्त हैं। उनका व्यवहार भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सच्चाईयों पर आधारित है। इसके बावजूद वे भारत में अपने क्रांतिकारी गतिविधि को मानवता की आजादी और मुक्ति की अंतर्राष्ट्रीय लड़ाई का अभिन्न हिस्सा मानते हैं। वे इस बात से अच्छी तरह से वाकिफ रहे हैं कि एक कम्युनिस्ट भविष्य का उनका सपना दुनियाभर के कॉमरेडों के सपनों से जुड़ा हुआ है। इसी का नतीजा है कि भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन हमेशा से ही प्रखर अंतर्राष्ट्रीयतावादी रहा है। दूसरे शब्दों में, वे दुनियाभर के पीड़ित लोगों और देशों के समर्थन में तब भी खड़े रहे हैं जबकि उनके देश के भीतर ही इसे लेकर कोई खास सुगबुगाहट नहीं थी।

भारत का कम्युनिस्ट आंदोलन अक्टूबर क्रांति(1917) से प्रेरित था। अक्टूबर क्रांति इतिहास की वह स्वर्णिम घटना थी जिसकी छाप जार साम्राज्य के खिलाफ हुए संग्राम से लेकर सभी उत्पीड़ित देशों के संग्रामों पर अमिट रूप से पड़ी। अंग्रेजी हुकूमत को भारत से उखाड़ फेंकने की चाहत रखने वाले भारतीय क्रांतिकारियों का एक दल, दुनिया के अलग–अलग हिस्सों से चलकर, तत्कालीन सोवियत संघ के ताशकंद पहुँचा। एम.एन.रॉय– एक भारतीय क्रांतिकारी जिन्होंने मेक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे– की मदद से इन्होंने 17 अक्टूबर 1920 को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

1920 के दशक की शुरुआत में प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अलावा भी देश के अलग. –अलग हिस्से में कम्युनिस्ट समूह उभर रहे थे। इनकी अगुवाई बॉम्बे में एस. ए. डांगे, कलकत्ता में मुजफ्फर अहमद, मद्रास में एस. सिंगारावेलु और लाहौर में गुलाम हुसैन जैसे नेता कर रहे थे। प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी गतिविधियों के माध्यम से इन समूहों को मार्क्सवाद–लेनिनवाद की सैद्धांतिक और व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करती थी।

एम.एन. रॉय के संपर्क में रहने वाले कम्युनिस्ट ने वर्तमान उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में 25 से 28 दिसम्बर के दौरान भारतीय कम्युनिस्टों की एक खुली कॉन्फ्रेंस आयोजित की और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना करने का निर्णय लिया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्यालय बॉम्बे में बनाया गया। भारत की सरजमीं पर एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनाने का यह पहला प्रयास था और भारतीय कम्युनिस्टों का एक धड़ा इसे भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन की शुरुआत मानता है।

एम एन रॉय (बीच में, काली टाई और कोट पहने) व्लादिमीर लेनिन (बाईं ओर से दसवें स्थान पर), मैक्सिम गोर्की (लेनिन के पीछे), व पेट्रोग्रैड के उरित्सकी पैलेस में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में शामिल अन्य प्रतिनिधि, 1920।

पत्रिका क्रास्नाय पैनोरमा / विकिपीडिया।

शुरुआती साल

भारतीय कम्युनिस्ट अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन से पूरी तरह आजादी हासिल करके ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें कामगार वर्ग अपनी किस्मत के मालिक खुद बन सकें। उनके लिए सोवियत संघ का उदाहरण इस बात का एक जीता जागता सुबूत था कि हकीकत में ऐसा मुमकिन है। उन्होंने पूरी सरगर्मी से संगठनात्मक कार्य करना शुरू किया जिसके फलस्वरूप 1920 के दशक के आखिरी दौर में शहरी क्षेत्रों में कामगार यूनियन आंदोलन काफी मजबूत हो गया। 1928 और 1929 के दौरान पूरे देश में कामगार वर्ग की हड़तालों की लहर चल पड़ी। हड़तालों की इस लहर में बॉम्बे की कपड़ा मिलों के मजदूरों और बंगाल के रेलवे मजदूरों द्वारा छेड़े गए लम्बे समय तक चलने वाले संघर्ष शामिल थे।

उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में कम्युनिस्टों के उभरकर सामने आने के बाद भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की अगुवाई कर रहे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अंग्रेजों के खिलाफ सख्त रवैया अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह अंग्रेजों के खिलाफ अब तक चली आ रही नरम रवैया अपनाने की कांग्रेसी नीति के बिलकुल उलट थी। 1921 में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में दो कम्युनिस्टों – मौलाना हसरत मोहानी और स्वामी कुमारानंद ने – अंग्रेजी हुकूमत से पूर्ण आजादी की माँग करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया। हालाँकि कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। लेकिन इस अधिवेशन में इस प्रस्ताव का उठाया जाना और इसपर गंभीरता से विचार किया जाना इस बात का सुबूत है कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के ऊपर कम्युनिस्ट विचारों का असर होने लगा था।

भारत में फैलते कम्युनिस्ट विचारधारा और अंग्रेजी साम्राज्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव से बौखलाए अंग्रेजों ने शुरुआती कम्युनिस्टों के खिलाफ षड्यंत्र रचने के मुकदमों की झड़ी लगा दी। सन् 1921 से लेकर 1933 के दौरान उस वक्त के कई महत्वपूर्ण कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया। इन मुकदमों में सबसे मशहूर मुकदमा मेरठ षड्यंत्र केस (1929–1933) था। हालाँकि इन मुकदमों को कम्युनिस्टों का दमन करने के मकसद से चलाया गया था। लेकिन इन मुकदमों ने कम्युनिस्टों को मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार–प्रसार करने के लिए एक बेहतरीन

मौका दे दिया। अदालतों में चल रहे इन मुकदमों की कार्रवाइयों के प्रति जनता के बीच काफी उत्साह था। इस मौके का फायदा उठाते हुए कम्युनिस्टों ने अदालतों के भीतर पूरे जोशो–खरोश के साथ मार्क्सवाद की व्याख्या की और उसका बचाव किया। तैंतीस आरोपियों में से सत्ताईस को कारावास या निर्वासन की सजा मिली। सन् 1934 में अंग्रेजों ने कम्युनिस्ट पार्टी और उससे जुड़े हुए संगठनों को अवैध घोषित कर दिया। इसकी सदस्यता को एक दण्डनीय अपराध करार दे दिया गया। कम्युनिस्टों ने अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों को गुप्त रूप से बदस्तूर जारी रखा और पार्टी की पहुँच और सदस्यता को बढ़ाने का निरंतर प्रसार करते रहे।

पूँजीवादी दुनिया में कहर बरपाने वाली महामंदी के दौर में सोवियत संघ की सफलता ने पूरी दुनिया के अनेक लोगों को समाजवाद और मार्क्सवाद की तरफ आकर्षित किया। भारत भी इस आकर्षण से अछूता नहीं रहा। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिबंधित होने के बावजूद कम्युनिस्ट लोग भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल विभिन्न संगठनों में, जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी शामिल थी, काम करते रहे। उन्होंने पार्टी की गतिविधियों को गुप्त रूप से जारी रखा और बहुत सारे नौजवानों को कम्युनिस्ट पार्टी में भर्ती किया। इस तरह से कम्युनिस्ट आंदोलन में भर्ती किए गए कई लोग आगे चलकर महत्वपूर्ण नेता बने। इन विभिन्न मंचों का उपयोग करके, जिनमें से एक मंच कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी या CSP (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर का एक वामपंथी धड़ा) भी थी, कम्युनिस्ट अनेक तबकों में बँटे लोगों को किसानों, मजदूरों, छात्रों, एवं लेखकों के विभिन्न जनसंगठनों और वर्गसंगठनों के रूप में लामबंद करने के अभियान में कूद पड़े।

मेरठ जेल के बाहर मेरठ षड्यंत्र केस में कैद किए गए पच्चीस लोगों की तस्वीर ली गई। तीसरी पंक्ति (बाएं से दाएं): के एन सहगल, एस एस जोश, एच एल हचिंसन, शौकत उस्मानी, बी एफ ब्रैडली, ए प्रसाद, पी स्प्रैट, जी अधिकारी। दूसरी पंक्ति: आर आर मित्रा, गोपन चक्रवर्ती, किशोरी लाल घोष, एल आर कदम, डी आर थेंगडी, गौरा शंकर, एस बनर्जी, के एन जोगलेकर, पी सी जोशी, मुजफ्फर अहमद। पहली पंक्ति: एम जी देसाई, डी गोस्वामी, आर एस निंबकर, एस एस मिराजकर, एस ए डांगे, एस वी घाटे, गोपाल बसाक।

द हिंदू आर्काइव्ज।

जनसंगठनों और वर्गसंगठनों का विकास

आंदोलन में परिपक्व होने पर कम्युनिस्टों ने पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करने के लिए कामगार वर्ग और किसानों की एकता के महत्त्व को पहचाना। उनको समझ में आ गया था कि अंग्रेजी प्रशासन के साथ–साथ परिवहन और संचार के माध्यमों को ठप्प करने में क्रांतिकारी मजदूर अहम भूमिका निभा सकते हैं। कम्युनिस्ट गतिविधियों के फलस्वरूप सन् 1937 में पूरे भारत में कामगार वर्ग के हड़तालों की लहर चल पड़ी जिसमें तकरीबन 6,06,000 मजदूर शामिल थे।

मजदूरों के साथ–ही–साथ कम्युनिस्टों ने आजादी के आंदोलन में छात्रों, नौजवानों और बुद्धि जीवियों की संभावित भूमिका को पहचाना और उनको क्रांतिकारी उद्देश्य के लिए लामबंद करने का प्रयास किया।

खास तौर पर कम्युनिस्टों को एहसास हुआ कि भारत जैसे देश में, जहाँ 80 प्रतिशत आबादी कृषि आधारित समाजों में बसती है, किसानों को बड़े पैमाने पर लामबंद करके ही देश को आजाद कराया जा सकता है। इस तरह अपने शुरुआती वर्षों में शहरी क्षेत्रों में शुरू होने वाला कम्युनिस्ट. आंदोलन ग्रामीण भारत में भी फैलना शुरू हो गया।

इस समझ के साथ 1936 में कम्युनिस्टों ने कई जनसंगठनों की स्थापना की: अखिल भारतीय किसान सभा (AIKS या All India Peasant Union), अखिल भारतीय छात्र परिषद (All India Students's Federation), प्रगतिशील लेखक संघ (Progressive Writers' Association), और 1943 में भारतीय जन नाट्य संघ (Indian People's Theatre Association) खेतिहर मजदूरों के पहले संगठन की शुरुआत भी कम्युनिस्टों ने ही की। इन जनसंगठनों ने हक और अधिकार की तलाश कर रहे समाज के विभिन्न तबकों के भीतर क्रांतिकारी चेतना का विकास करने में सहायता की।

ग्रामीण भारत में कदम रखते ही कम्युनिस्ट आंदोलन को भारतीय सामंतवाद के चिरस्थापित ढाँचों– विशेषकर वर्ग और जाति के गठजोड़– का सामना करना पड़ा। ग्रामीण भारत में जमींदार

वर्ग, साहूकारों, और सरकारी मुलाजिमों के हाथों किसानों का शोषण अपने चरम पर था। लगान और कर्ज देने के बाद अनाज उगाने वाले किसानों के पास अपने परिवारों का पेट पालने के लिए समुचित अनाज भी नहीं बचता था। कर्ज के चक्र में फँसकर किसानों का एक बड़ा हिस्सा अपनी जमीनें गँवाकर जोतदार में तब्दील हो गया। मुख्यत: अस्पृश्य जातियों से सम्बंध रखने वाले भूमिहीन मजदूरों की दशा बेहद दयनीय थी। स्थापित सामाजिक परंपराओं और बाहुबल के आधार पर वे बेगार करने और अमानवीय परिस्थितियों में गुजर–बसर करने को मजबूर थे। गाँवों में कम्युनिस्टों ने सबसे पहले अस्पृश्यता जैसे मुद्दों को उठाया और उनको कम मजदूरी और बंधुआ मजदूरी जैसे मुद्दों से जोड़ा।

कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसान आंदोलन ने जोर पकड़ा। कम्युनिस्टों की अगुवाई वाली किसान सभा की सदस्यता मई 1938 में 6,00,000 से बढ़कर अप्रैल 1939 तक 8,00,000 तक पहुँच गई। किसान आंदोलन की माँगों की सूची में जमींदारी प्रथा का खात्मा और भूमि का मालिकाना हक खेत जोतने वाले किसानों को देने, बेगार मजदूरी और जमींदारों द्वारा जबरन बेदखली की समाप्ति, भूमिहीन किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण, भूमि कर व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन, और फसलों के लिए बेहतर दाम की माँगें शामिल थीं।

जहाँ कम्युनिस्टों ने किसानों को लामबंद किया वहीं कांग्रेस के नेतृत्व ने ज्यादातर जगहों पर जमींदारों और शासकों से खुलेआम साँठ–गाँठ किया। भारतीय उद्योगपति और जमींदार वर्ग कांग्रेस के दो प्रमुख आधारस्तंभ थे। इसकी वजह से कांग्रेस के भीतर कम्युनिस्टों और दक्षिणपंथी धड़ों के बीच तनाव बढ़ने लगा। कांग्रेस की अगुवाई वाली प्रांतीय सरकारें जमींदारों और पूँजीपतियों का खुले तौर पर सहयोग कर रही थीं। कांग्रेस के दक्षिणपंथी धड़े के दबाव में आकर CSP के नेतृत्व ने कम्युनिस्टों को निष्कासित कर दिया। प्रमुख कम्युनिस्ट विचारक और केरल राज्य के पहले मुख्यमंत्री ई.एम.एस नम्बूद्रीपाद याद करते हुए बताते हैं कि इसके बाद 'CSP की कुछ राज्य, जिला और स्थानीय इकाइयों (जिसमें CSP के केरल के सारे सदस्य शामिल थे) ने खुद को CSP से पूरी तरह से सीपीआई (भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी) में तब्दील कर लिया।'

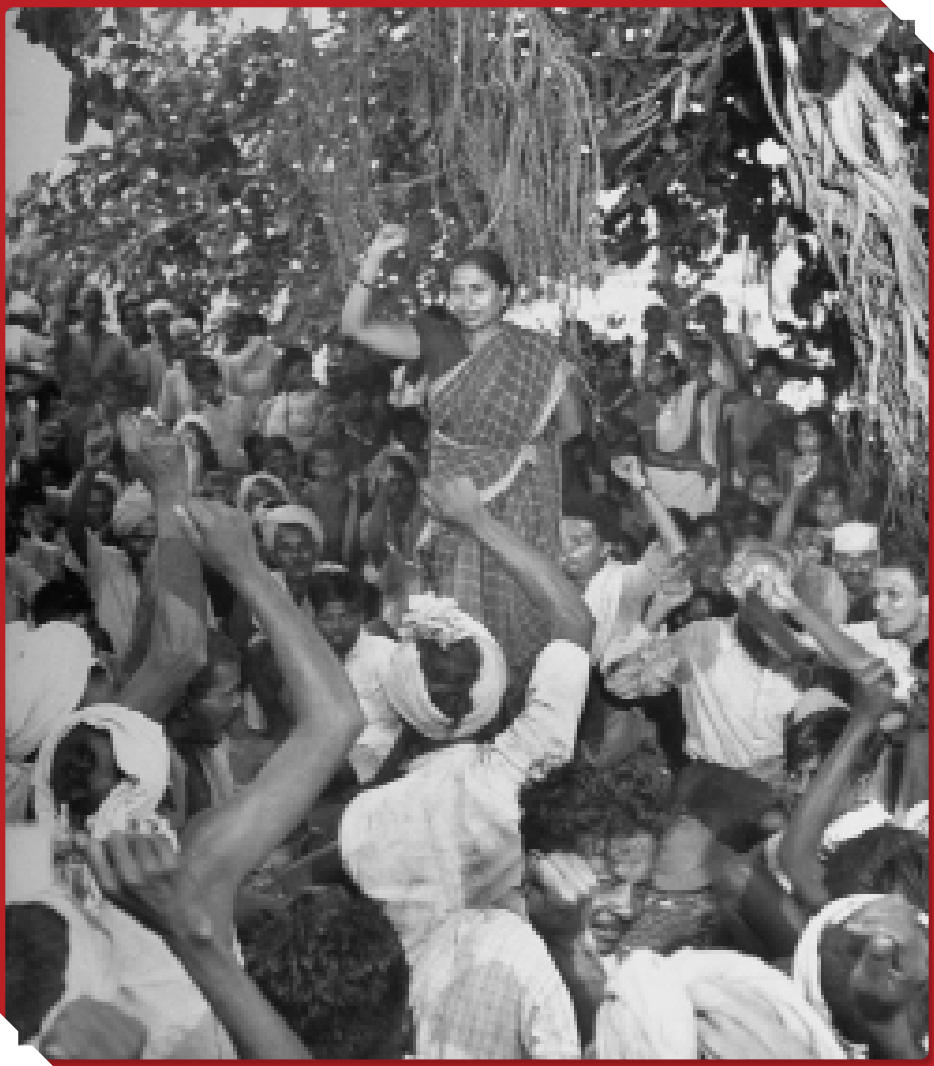

1946: कम्युनिस्ट आंदोलन और अखिल भारतीय किसान सभा की नेता गोदावरी पारुलेकर, वर्तमान महाराष्ट्र के ठाणे में वार्ली आदिवासियों को संबोधित कर रहीं हैं। जमींदारों द्वारा किए जा रहे उत्पीड़न के खिलाफ किसान सभा के नेतृत्व में वार्ली विद्रोह, 1945 में शुरू हुआ था।

मार्गरेट बॉर्के–व्हाइट / द हिंदू आर्काइव्ज।

द्वितीय विश्व युद्ध

1939 में जब द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा तो अंग्रेजों ने भारतीय जनता के प्रतिनिधियों से बातचीत किए बिना ही भारत को इस युद्ध में घसीट लिया। युद्ध की वजह से आवश्यक वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने से भारत की जनता को भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने युद्ध का जबर्दस्त विरोध किया और विरोध प्रदर्शनों का आयोजन किया। अंग्रेजी हुकूमत ने बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ शुरू कीं। मई 1941 तक सीपीआई के लगभग पूरे नेतृत्व को जेल में डाल दिया गया।

लेकिन 22 जून 1941 को जर्मनी द्वारा सोवियत संघ पर आक्रमण करने के पश्चात इस युद्ध का चरित्र पूरी तरह बदल गया। अब यह एक साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध ना रहकर फासीवाद के विरुद्ध एक जनयुद्ध बन गया। सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद ने सभी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों का आह्वान किया कि 'हिटलर का फासीवाद मुख्य शत्रु था तथा विश्व क्रांति के आधार को बचाने के लिए ब्रिटेन और अमेरिका के साथ मिलकर सोवियत संघ द्वारा छेड़े गए युद्ध को सभी लोगों द्वारा मिलकर जीतना आवश्यक था।' (सीपीआई के पोलित ब्यूरो का प्रस्ताव, जिसे 15 दिसम्बर 1941 को सभी सदस्यों को पार्टी पत्र संख्या 56 के साथ भेजा गया)।

कांग्रेस अंग्रेजों के साथ समझौता वार्ता कर रही थी जिसके तहत अंग्रेजों ने कुछ रियायतें देने की पेशकश की। इन रियायतों में युद्ध के खत्म होने के पश्चात ही सत्ता का हस्तांतरण शामिल था। समझौता वार्ता असफल रही। जापानी सेना अंग्रेजों के कब्जे वाले सिंगापुर, बर्मा, मलाया और अंडमान द्वीपों पर फतह हासिल करते हुए भारत की तरफ बढ़ती चली आ रही थी। भारत पर जापानी हमले की संभावना प्रबल थी। लेकिन फासीवाद के खिलाफ लम्बे समय से मुखर रहने वाली कांग्रेस ने इसी वक्त अंग्रेजों पर तुरंत समझौता करने के लिए दबाव बनाने के मकसद से औपनिवेशिक शासकों से 'भारत छोड़ने' की माँग करते हुए भारत छोड़ो आंदोलन छेड़ दिया।

कम्युनिस्टों ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के भारत छोड़ो प्रस्ताव का विरोध किया। ऐसी परिस्थिति में जब दुनिया में फासीवादी ताकतें निरंतर आगे बढ़ रही थीं तब उनको लगा कि यह

माँग वक्त के अनुकूल नहीं होगी। मित्र राष्ट्रों के कमजोर होने से फासीवाद विरोधी युद्ध की मुहिम कमजोर पड़ जाती। लेकिन लोग औपनिवेशिक शासन के छुटकारा पाने के लिए बेचैन थे। कम्युनिस्टों का मत उस वक्त के जनमत के विपरीत चला गया।

भारत की आजादी के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने इस मत का पुनरावलोकन किया। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान जनता की मनोदशा के खिलाफ जाना एक गंभीर भूल माना गया। सीपीआई इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अंतर्राष्ट्रीय पटल पर चल रहे जनयुद्ध का समर्थन करने के साथ–साथ कम्युनिस्टों को ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से 'भारत छोड़ने' की भारतीय जनता की वाजिब माँग का समर्थन करना चाहिए था। हालाँकि अंग्रेजों के खिलाफ भारत छोड़ने का नारा देने के तुरंत बाद ही कांग्रेस के ज्यादातर नेता गिरफ्तार कर लिए गए, जिसकी वजह से कांग्रेस नेतृत्व के पास इस दमनकारी वक्त में भारत छोड़ो आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए तैयारी और दिशा–निर्देशों का नितांत अभाव हो गया। 'भारत छोड़ो' अह्वान से असहमत होने के बावजूद कम्युनिस्टों ने जेल में बंद कांग्रेसी नेताओं की रिहाई के लिए मुहिम चलाई और एक राष्ट्रीय एकीकृत सरकार बनाने की माँग की।

कम्युनिस्ट पार्टी के ऊपर प्रतिबंध सन् 1934 में लगाया गया था। प्रतिबंध को सन् 1942 में हटाया गया और कम्युनिस्टों को जेल से रिहा किया गया। युद्ध के दौरान 1943–1944 में बंगाल के भीषण अकाल ने बंगाल, उड़ीसा, और असम में तीस लाख से ज्यादा लोगों को अपना शिकार बना लिया। अर्थशास्त्री उत्सा पटनायक रेखांकित करती हैं कि यह अकाल अंग्रेजों द्वारा वस्तुओं की कीमतों को बढ़ाकर तथा कामगार वर्ग की आय को कम रखकर पूँजीपति और व्यापारी वर्ग के लिए अकूत मुनाफा कमाने के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करने की सोची समझी नीति का नतीजा था। अंग्रेजों ने 'जापान के खिलाफ युद्ध में शामिल दक्षिण एशिया के सहयोगी राष्ट्रों के युद्ध को वित्तपोषित करने के लिए संसाधन इकट्ठा करने के लिए भारतीय जनता के उपभोग में कटौती करने के लिए इस नीति को अपनाया।' कम्युनिस्टों ने आवश्यक वस्तुओं के संग्रहण और वितरण में सक्रिय भागीदारी निभाई। पार्टी ने अनाज और आवश्यक वस्तुओं की जमाखोरी करने वाले व्यापारी और जमींदार तबके के खिलाफ आंदोलन छेड़ने के लिए, और ऐसे शोषकों पर कृपादृष्टि रखने वाले अंग्रेज शासकों के जन विरोधी चरित्र का पर्दाफाश करने के लिए मुहिम चलाई। नवयुवतियों

को मानव तस्करों से बचाने के लिए महिला आत्मरक्षा समिति की स्थापना की गई। स्वयंसेवकों और मेडिकल दलों को लामबंद किया गया और राहत कार्यों के लिए भेजा गया। युद्ध को लेकर जनता के मत से अलग मत रखने के बावजूद इस अथक परिश्रम के बल पर कम्युनिस्टों ने अपनी ताकत हासिल की और पार्टी के जन समर्थन में भी काफी बढ़ौतरी हुई।

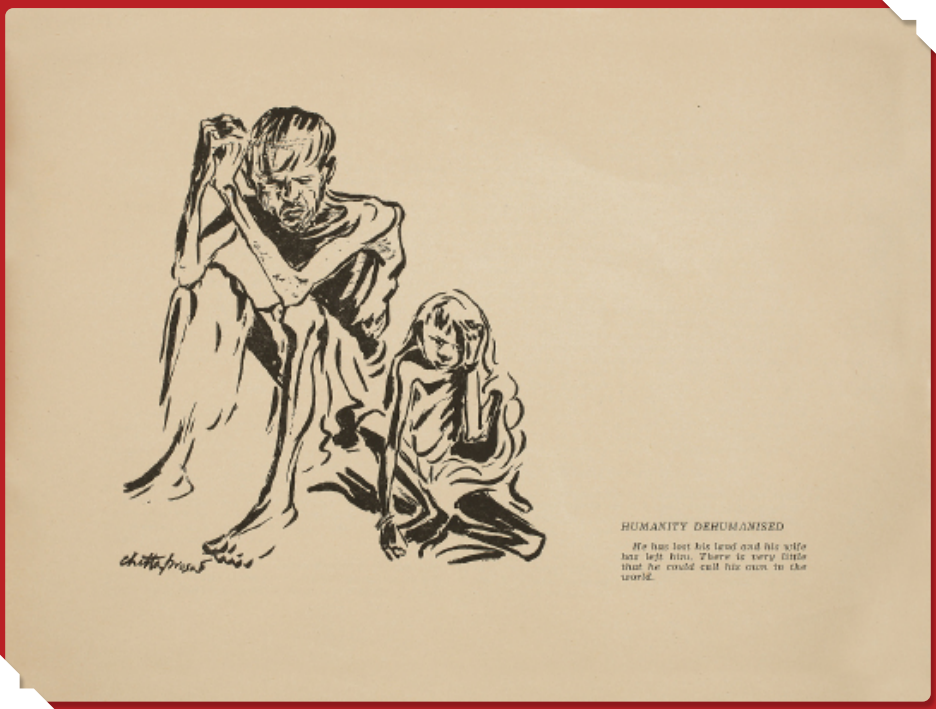

चित्तप्रसाद की किताब भूखा बंगाल (1945) का एक पृष्ठ। अंग्रेजों ने किताब की प्रतियां जब्त कर जला दींय ये चित्र किताब की एकमात्र बची रह गयी प्रतिलिपि में से लिया गया है (जिसकी प्रतिकृति डी ए जी मॉडर्न, नई दिल्ली, ने 2011 में पुनःप्रकाशित की थी)। बंगाल अकाल पर चित्तप्रसाद के चित्र भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जर्नल 'पीपुल्स वॉर' में प्रकाशित हुए थे, और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जनता के गुस्से को पैना कर रहे थे।

युद्ध के पश्चात जन प्रतिरोध की लहर

युद्ध के पश्चात जन प्रतिरोधों की लहर का दौर शुरू हो गया। बहुत सारे जन प्रतिरोधों की अगुवाई कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी। युद्ध के दौरान बहुत सारे क्षेत्रों में कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी। इस ताकत का उपयोग करते हुए पार्टी ने जनता के भीतर उबल रहे आक्रोश को प्रतिरोध में तब्दील किया।

पचास से सत्तर लाख मजदूरों को काम से निकाले जाने और जीवन यापन के लिए जरूरी खर्चों में होती बढ़ौतरी के जवाब में तथा साथ–ही–साथ देश की आजादी के संग्राम को मजबूत करने के लिए कामगार वर्ग के प्रतिरोध की लहर ने पूरे देश को अपने आगोश में ले लिया। कामगार वर्ग की इन विशाल हड़तालों में सन् 1946 में हुई डाक कर्मियों, टेलीग्राफ और रेलवे मजदूरों की हड़तालें शामिल हैं।

फरवरी 1946 में हुई रॉयल इंडियन नेवी (Royal Indian Navy, RIN) के कनिष्ठ अफसरों की बगावत एक युगांतरकारी घटना थी। बगावत करने वाले नौसैनिकों ने दूसरी पार्टियों के झंडों के साथ–साथ लाल झंडा भी फहराया। उन्होंने हथियार उठा लिए और अपने वरिष्ठ अफसरों को गिरफ्तार कर लिया। सीपीआई ने इस बगावत का पूरी तरह से समर्थन किया और 22 फरवरी 1946 को हड़ताल का आह्वान किया। देश भर मे लाखों मजदूर हड़ताल में शामिल हुए, व्यापारियों ने अपने प्रतिष्ठान बंद रखे और विद्यार्थियों ने कक्षाओं का बहिष्कार किया। बागी नौसैनिकों ने आखिरकार 23 फरवरी को आत्मसमर्पण कर दिया। लेकिन कम्युनिस्टों की अगुवाई में चलाए गए आंदोलनों से उन्हें अपार जनसमर्थन हासिल हुआ जिसकी वजह से उनका वजूद मिटाने को तत्पर अंग्रेज अपने मंसूबों में कामयाब नहीं हो पाए।

इस अवधि के दौरान, भारत के विभिन्न हिस्सों में जमींदारों के शोषण के खिलाफ कम्युनिस्टों के नेतृत्व में किसान बड़े पैमाने पर लामबंद हुए। सीपीआई ने हर जगह गाँवों को अपने बोझ तले दबाए सदियों से कायम विभिन्न प्रकार के शोषणकारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं को खत्म करने की माँग की। कम्युनिस्टों के नेतृत्व में कुछ जगहों पर इसने सशस्त्र विद्रोह का भी

रूप ले लिया। आंध्र, तेलंगाना, तमिलनाडु, केरल और महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, आसाम, त्रिपुरा और कश्मीर तक महिला और पुरुष किसान बड़ी संख्या में संगठित होकर आंदोलन में शामिल हुए। बौखलाए हुए शासक वर्ग ने चरम हिंसा का प्रयोग करने इनका दमन करना चाहा। जिन अधिकारों के लिए किसान संघर्ष कर रहे थे, उनमें से बहुत सारे अधिकार आखिरकार उन्होंने जीतकर हासिल किए। इससे कम्युनिस्ट आंदोलन और ज्यादा मजबूत हुआ।

बॉम्बे में सीपीआई मुख्यालय में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो की बैठक में बी टी रणदिवे, जी अधिकारी और पीसी जोशी, 1945।

सुनील जानाह / द हिंदू आर्काइव्ज।

तेभागा आंदोलन

तेभागा आंदोलन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई में अखिल भारतीय किसान सभा के बैनर तले बंगाल में 1946 से लेकर 1950 के बीच लड़ा गया एक विशाल किसान आंदोलन था। बटाईदारों को खेत की उपज का सिर्फ आधा हिस्सा अपने पास रखने की अनुमति थी। शेष आधा हिस्सा भूस्वामियों के पास जाता था। तेभागा आंदोलन की माँग थी कि बटाईदार किसानों को खेत की उपज का दो–तिहाई हिस्सा मिले तथा लगान में कटौती की जाए। तेभागा का शाब्दिक अर्थ होता है 'तीन हिस्से'। यह शब्द उपज को तीन हिस्सों में बाँटकर उपज के दो हिस्सों को बटाईदारों को देने की माँग को दर्शाता है। यह आंदोलन उस दौरान शुरू हुआ जब कलकत्ता और बंगाल के पूर्वी हिस्से में स्थित नोआखली जिले में सांप्रदायिक दंगे हो रहे थे। लेकिन तेभागा आंदोलन ने वर्ग संघर्ष की बुनियाद पर कायम हिंदू–मुस्लिम एकता की एक नायाब मिसाल पेश की। किसान सभा के प्रभाव वाले क्षेत्र दंगा मुक्त रहे। इस संघर्ष के दौरान पुलिस द्वारा मारे गए 73 लोगों में हिंदू, मुसलमान और आदिवासी मर्द तथा औरतें शामिल थे। बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार के क्रूर दमन के बावजूद तेभागा आंदोलन बटाईदार किसानों के लिए जिन अधिकारों की माँग कर रहा था, उनमें से कई को इस संघर्ष के फलस्वरूप बहुत से क्षेत्रों में लागू किया गया।

---

1 दक्षिणी एशिया में सांप्रदायिकता का तात्पर्य इस विचार से है कि धार्मिक समुदाय धर्मनिरपेक्ष हितों वाले एक–दूसरे के परस्पर विरोधी राजनीतिक समुदाय होते हैं। सांप्रदायिकता की विचारधारा से ताल्लुक रखने वाले राजनीतिक दलों को सांप्रदायिक दल कहा जाता है। सांप्रदायिकता के माहौल में विभिन्न धार्मिक समुदायों द्वारा एक–दूसरे से टकराने की परिघटना को 'सांप्रदायिक हिंसा' तथा 'सांप्रदायिक दंगा' जैसे शब्दों से संबोधित किया जाता है।

तेलंगाना का सशस्त्र संघर्ष

तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष भारत के समूचे इतिहास में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में छेड़ा गया सबसे बड़ा संग्राम था। तब हैदराबाद रियासत का हिस्सा रहे तेलुगुभाषी क्षेत्र तेलंगाना की धरती पर छिड़ने वाला यह संग्राम 1946 से 1951 तक चला। अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत में सैकड़ों ऐसे क्षेत्र थे जो सीधे तौर पर अंग्रेजी हुकूमत के अधीन नहीं थे। अंग्रेजों के साथ सहायक संधि करने के पश्चात सामंती राज्यों को अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों में शासन करने की अनुमति दे रखी थी। निजाम की पदवी धारण करने वाले एक राजा द्वारा शासित हैदराबाद एक ऐसी ही रियासत थी। कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में लड़े जाने वाले तेलंगाना के संग्राम ने निजाम के निरंकुश राज और जमींदारों के सामंती शोषण के आखिरकार लोहा लिया। यह संघर्ष अनुचित करों और वेत्ती (बेगार) की समाप्ति तथा भूमि का स्वामित्व खेत जोतने वाले किसानों को देने की माँग के साथ शुरू हुआ। जैसे–जैसे कम्युनिस्ट आंदोलन मजबूत होता गया वैसे–वैसे रजाकारों (निजाम के सैनिक) और पुलिस की तरफ से कम्युनिस्टों का दमन, हिंसा और हत्याएँ बढ़ती गईं, जिसकी वजह से इस संघर्ष ने सशस्त्र रूप ले लिया। जब सशस्त्र संघर्ष अपने शीर्ष पर था तब आंदोलन के नियंत्रण में करीब 30 लाख की आबादी वाले 3000 गाँव थे। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप किसानों के बीच दस लाख एकड़ जमीन बाँटी गई। बेगारी को समाप्त कर दिया गया। मजदूरों की दिहाड़ी बढ़ाई गई और न्यूनतम मजदूरी को लागू किया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सेवाओं को इन गाँवों में स्व–संगठित समितियों के माध्यम से संचालित किया गया।

कांग्रेसी सरकार ने 13 सितम्बर 1948 को कम्युनिस्टों ने नेतृत्व में चल रहे इस संघर्ष को कुचलने के लिए तथा निजाम को भारतीय संघ में शामिल होने के लिए मजबूर करने के लिए 'पुलिसिया कारवाई' शुरू कर दी। निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा हैदराबाद राज्य के भारत में विलय की घोषणा कर दी गई। लेकिन हैदराबाद रियासत के भारत में विलय के लिए इतना ही काफी नहीं था। किसान आंदोलन को कुचलने के लिए भारतीय सेना गाँवों की तरफ कूच कर गई। जमींदारों को जमीन वापस दिलाने के लिए भारतीय सेना और पुलिस के साथ जमींदार और निजाम के पूर्ववर्ती क्षेत्रीय प्रशासक भी गाँवों में पहुँचे। कई जगहों पर लोगों ने सफलतापूर्वक उनका मुकाबला

किया। तकरीबन 4000 कम्युनिस्ट और किसान लड़ाकों ने इस बगावत और दमन चक्र के दौरान अपनी शहादत दी। दस हजार से ज्यादा लोगों को प्रताड़ना केंद्रों में डालकर उन्हें तीन–चार सालों तक प्रताड़ित किया जाता रहा।

तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष (1946–1951) के दौरान मल्लू स्वराज्यम (बाएं) और सशस्त्र दस्ते के अन्य सदस्य।
सुनील जानाह/ प्रजाशक्ति पब्लिशिंग हाउस।

पुन्नप्र–वयलार विद्रोह

सन् 1946 में केरल के अलप्पुझा जिले में स्थित पुन्नप्र और वयलार नामक दो गाँव त्रावणकोर के राजा और उसके प्रधानमंत्री के निरंकुश शासन के खिलाफ छिड़े संघर्ष के प्रमुख केंद्र बन गए। त्रावणकोर हैदराबाद की तरह ही एक रियासत थी। त्रावनणकोर के शासक आजाद भारत में शा. मिल नहीं होना चाहते थे। वो भारत द्वारा अपनाए गए संसदीय प्रणाली की बजाये 'अमेरिकी मॉडल' की तर्ज पर कार्यकारी राष्ट्रपति वाली प्रणाली अपनाना चाहते थे। निर्वाचित विधायिका के प्रति जवाबदेह सरकार की माँग न मानकर 'अमेरिकी मॉडल' थोपने के त्रावणकोर के शासकों के इस कदम ने कामगार वर्ग को कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई में आंदोलन छेड़ने पर मजबूर कर दिया। मजदूरों और हथियारबंद पुलिस के बीच घमासान युद्ध हुआ। 24 अक्टूबर से लेकर 27 अक्टूबर के दरम्यान पुलिस ने सैकड़ों मजदूरों पर गोलियाँ चलाकर उनको मौत के घाट उतार दिया। एक साल के भीतर ही प्रधानमंत्री को बेआबरू होकर त्रावणकोर से रुखसत होना पड़ा। त्रावणकोर रियासत के भारत में शामिल होने के बाद लोकतांत्रिक सरकार की राजनीतिक माँग हकीकत बन सकी। इस आंदोलन ने भाषा के आधार पर केरल राज्य के गठन की नींव भी तैयार की। मलयालम भाषी त्रावणकोर और कोचीन की भूतपूर्व रियासतों तथा अंग्रेजी शासन के अधीन मद्रास प्रेसीडेंसी के मालाबार जिले को मिलाकर भाषा के आधार पर केरल राज्य का गठन किया गया।

कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर मतभेद

15 अगस्त 1947 को भारत के आजाद होने तक कम्युनिस्ट आंदोलन के सामने कई सवाल खड़े हो चुके थे। जिस औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ कम्युनिस्टों ने पुरजोर लड़ाई लड़ी थी वो भारत छोड़कर जा चुकी थी। नये लोग सत्तानशीं हुए। लेकिन इस नये राज्य का स्वरूप कैसा था और ये नये शासक कौन थे? क्या नया भारतीय राज्य एक औपनिवेशिक ताकत की कठपुतली मात्र था? या फिर यह भारतीय शासक वर्गों का हितैषी, एक स्वतंत्र राज्य था? इस नये संदर्भ में उभरने वाले शासक वर्ग कौन थे? नये राज्य और इसके शासक वर्गों से कम्युनिस्टों के सम्बंधों का स्वरूप कैसा होना चाहिए? क्या कम्युनिस्ट पार्टी को नये शासकों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बंध स्थापित कर उनका सहयोगी बन जाना चाहिए? या फिर उसको राज्य को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य के साथ सशस्त्र संघर्ष का बिगुल फूँक देना चाहिए? उसको 'रूसी पथ' या फिर 'चीनी पथ' का अनुसरण करना चाहिए? या फिर कोई भारतीय पथ भी मौजूद था? ये भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर से उभरने वाले प्रमुख सवाल थे और इनकी वजह से आगे चलकर आंदोलन के भीतर कई धाराओं का जन्म हुआ।

1950 के दशक के मध्य के बाद से ये मतभेद गहराते चले गए। स्वातंत्रोत्तर भारत में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में बनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सरकार की नीतियों के विश्लेषण का अविलम्ब सवाल खड़ा हो गया। सरकार अपेक्षाकृत रूप से स्वतंत्र विदेश नीति का पालन कर रही थी। सरकार ने आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया शुरू की। कांग्रेस ने ये तक दावा किया कि उसका मकसद एक समाजवादी स्वरूप वाले समाज का निर्माण करना है। सीपीआई के एक धड़े का मानना था कि कम्युनिस्टों को कांग्रेस के भीतर मौजूद वामपंथी धड़े, जिसका प्रतिनिधित्व जवाहर लाल नेहरू कर रहे थे, के साथ मिलकर काम करना चाहिए। उनका तर्क था कि यह धड़ा राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधि तथा साम्राज्यवाद और सामंतवाद का विरोधी था।

इन बहसों का अंत आखिरकार 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन के साथ हुआ। कांग्रेस का सहयोग करने की नीति का विरोध कर रहे धड़े ने अलग होकर भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी

(मार्क्सवादी) या CPI(M) का गठन किया। दूसरा धड़ा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) नाम ही प्रयोग करता रहा।

1969 में, सशस्त्र संघर्ष की जरूरत के विचार से आश्वस्त होकर अन्य कम्युनिस्टों ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) या CPI(ML) की स्थापना की।

वाम सरकारें

राज्य स्तर पर कम्युनिस्टों के नेतृत्व में सरकारें बनने के बाद भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के एक महत्वपूर्ण दौर का आगाज हुआ।

भारत बहुसंख्य भाषाई राष्ट्रीयताओं से मिलकर बना एक राष्ट्र है। भारतीय राज्यतंत्र भाषा के आधार पर गठित राज्यों से मिलकर बना हुआ है (उदाहरण के लिए बांग्ला भाषा बोलने वाले लोगों के लिए पश्चिम बंगाल, तमिल भाषा बोलने वाले लोगों के लिए तमिलनाडु)। भाषा के आधार पर भारतीय राज्यों के पुनर्गठन में कम्युनिस्ट आंदोलन ने प्रमुख भूमिका निभाई। अंग्रेजी शासन के दौरान और आजादी के बाद के शुरुआती सालों में राज्यों के बँटवारे का कोई तर्कसंगत आधार नहीं होता था। अंग्रेजों ने जिस कालखंड और जिन परिस्थितियों में उन क्षेत्रों पर कब्जा जमाया उसके हिसाब से राज्य बना दिए। इसके परिणामस्वरूप मूल निवासियों के ऊपर बाहरी भाषाओं को थोपा गया जिसने शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी हिस्सेदारी को कठिन बना दिया। कम्युनिस्टों ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की वकालत इस समझ के साथ की कि भारत एक बहु–राष्ट्रीय राज्य है जहाँ वृहद भारतीय राष्ट्र में विभिन्न भाषाई–सांस्कृतिक समूहों से मिलकर बनी हुई अलग–अलग राष्ट्रीयताओं का वास है। तेलंगाना विद्रोह और पुन्नप्र–वयलार विद्रोह भारत में भाषा के आधार पर राज्यों के गठन के लिए छेड़े गए आंदोलनों के लिए जमीन तैयार करने वाले संघर्षों में शामिल थे।

भारत की आजादी के पहले और बाद में भी कई क्षेत्रों में कम्युनिस्टों ने किसानों को सफलतापूर्वक संगठित किया था। इसकी वजह से वे भाषा के आधार पर गठित कुछ राज्यों में चुनाव में जीत हासिल करने और सरकारें बनाने की ताकत रखते थे। हालाँकि यह स्पष्ट था कि सिर्फ चुनाव जीतने और शासन करने भर से कामगार वर्ग और किसानों को राजशक्ति नहीं मिलने वाली थी, लेकिन उनकी राज्य सरकारों ने कम्युनिस्टों को वैकल्पिक नीतियों का प्रदर्शन करने के साथ–साथ लोगों को राहत पहुँचाने और चुनावी प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने में सक्षम बनाया।

कम्युनिस्ट नेता एस.एस मिराजकर, जो उस समय बॉम्बे के मेयर थे, की अध्यक्षता में संयुक्त महाराष्ट्र समिति के सदस्यों ने 1958 में संसद भवन, नयी दिल्ली के सामने प्रदर्शन किया।

द हिंदू आर्काइव्ज।

केरल

आंध्र प्रदेश राज्य में कम्युनिस्टों की अगुवाई में सरकार बनाने में विफल रहने के बाद केरल में उनको ऐतिहासिक विजय मिली। केरल राज्य 1956 में साझी भाषा मलयालम के आधार पर बना था। 1957 में सीपीआई ने पहले चुनावों में जीत हासिल करके सरकार बनाई। 5 अप्रैल 1957 को ई. एम. एस. नम्बूद्रीपाद ने केरल के पहले मुख्यमंत्री के तौर पर शपथ ग्रहण किया।

केरल में कम्युनिस्टों ने कामगार वर्ग और किसानों के शक्तिशाली आंदोलनों के बल पर सत्ता हासिल की। कम्युनिस्टों ने किसानों को अधिक लगान, भारी वसूली, बेदखली और सामाजिक तिरस्कार की परिस्थिति में जीने को मजबूर करने वाली सामंतवादी जमींदारी के खिलाफ दशकों लम्बा संघर्ष चलाया था। इसी वजह से कम्युनिस्टों के एजेंडे में भूमि सुधार का सर्वोपरि होना स्वाभाविक था। 1957 में सत्ता हासिल करने के 6 दिनों के बाद ही सीपीआई की सरकार ने अध्यादेश जारी करके जमींदारों द्वारा किसानों की बेदखली पर प्रतिबंध लगा दिया। सरकार ने भूमि सुधार विधेयक– केरल कृषि सम्बंध विधेयक पेश किया। इस विधेयक के उद्देश्यों में खेत जोतने वाले किसानों को स्थायी स्वामित्व प्रदान करना, उचित कर निर्धारित करना, भूमि स्वामित्व की ऊपरी सीमा निर्धारित करना, खेत जोतने वालों को उनके द्वारा जोते जा रहे खेतों को खरीदने का अधिकार देना शामिल था।

कम्युनिस्ट सरकार ने शिक्षा पर होने वाले खर्च का बड़े पैमाने पर विस्तार किया और ज्यादा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का विकास तथा काम के हालातों में सुधार, नौकरी की सुरक्षा, तथा निजी स्कूलों के शिक्षकों के पारिश्रमिकी में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का विस्तार किया गया और गरीबों को सस्ते दर पर चावल उपलब्ध कराने के लिए उचित दर की दुकानों का एक व्यापक तंत्र स्थापित किया गया।

भूमि सुधारों से जमींदार बौखलाए गए। बड़ी संख्या में निजी स्कूल चलाने वाले कैथोलिक चर्च को शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले सुधार नापसंद थे। कैथोलिक चर्च और जमींदारों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रभावशाली जातिगत संगठनों ने कम्युनिस्ट सरकार का विरोध करने के

लिए कांग्रेस से हाथ मिला लिया। उन्होंने एक आंदोलन छेड़ा जिसका नाम विमोचना समरम ('मुक्ति संघर्ष) रखा, जिसे एक विडम्बना ही कहा जा सकता है। इस मौके का फायदा उठाते हुए केंद्र की कांग्रेसी सरकार ने केरल की कम्युनिस्ट सरकार को 1959 में बर्खास्त कर दिया।

पहली कम्युनिस्ट सरकार की बर्खास्तगी के बाद सत्ता में आने वाली कांग्रेसी सरकारों ने भूमि सुधार विधेयक को कमजोर किया। इसके बावजूद 1967–1969 की कम्युनिस्ट सरकार के विधेयकों और प्रशासनिक कदमों, तथा 1970 के दशक के शुरुआती सालों के दौरान भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की अगुवाई में लड़े गए आंदोलनों की बदौलत दूरगामी भूमि सुधारों को अमल में लाया गया जोकि आने वाले सालों के दौरान भी जारी रहा। 1993 तक 28 लाख किसानों को या तो भूमि स्वामित्व प्रदान किया गया या फिर उनके अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की गई। इन कदमों से उनको करीब 6,00,000 हेक्टेयर भूमि का मालिकाना हक मिला। 1996 तक 5,28,000 से ज़्यादा भूमिहीन मजदूरों को घर के लिए जमीन प्रदान की गई।

केरल में भूमि सुधारों ने प्रभावशाली जातियों की जमींदारी की कमर तोड़ दी, किसानों की जिंदगी के स्तर को सुधारा और खेतिहर मजदूरों को मोल–भाव करने की बेहतर स्थिति में पहुँचाया। शिक्षा और स्वास्थ्य में होने वाले सार्वजनिक निवेश के फलस्वरूप शैक्षिक और स्वास्थ्य सम्बंधी संकेतकों में तेजी से सुधार हुआ। 1970 के दशक के मध्य के बाद होने वाले अकादमिक अध्ययनों ने इन बदलावों को रेखांकित किया जिससे 'केरल मॉडल' नामक विचार का जन्म हुआ। केरल मॉडल निम्नलिखित बुनियादी विचारों पर आधारित है: (1) पूरी आबादी के जिंदगी की भौतिक परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए किसी भी देश अथवा क्षेत्र के धनवान बनने का इंतजार करने की आवश्यकता नहीं होती, और; (2) लोग सामूहिक कदम उठाकर सरकार को पुनर्वितरण की नीति और दूसरे कार्यक्रमों को अपनाने पर मजबूर करके ऐसे बदलावों को संभव बना सकते हैं। केरल सबसे ज्यादा साक्षरता दर और सबसे कम शिशु मृत्यु दर वाला भारतीय राज्य है। इस राज्य में मजदूरी की दर भी सबसे ज़्यादा है और मजदूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा के व्यापक कार्यक्रम मौजूद हैं। इनको मूर्त रूप देने में कामगार वर्ग के आंदोलनों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है।

ई एम एस नंबूदरीपद (दाएं) केरल के पहले मुख्यमंत्री के रूप में शपथ लेते हुए। तिरुवनंतपुरम, 5 अप्रैल 1957।

राजन पोडुवल / द हिंदू आर्काइव्ज।

पश्चिम बंगाल

बंगाल सूबा अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के दंश से सबसे बुरी तरह प्रभावित सूबों में से एक था। उपनिशेवाद से उपजे अकालों ने लाखों बंगालियों को अपना शिकार बनाया। बंगाली किसान देश के सबसे ज्यादा शोषित किसानों में से एक थे। आजादी मिलने के साथ–साथ देश का विभाजन भारत और पाकिस्तान नामक दो अलग–अलग देशों में हो गया। धार्मिक पहचान के आधार पर होने वाले सांप्रदायिक दंगों ने लाखों लोगों की जिंदगियाँ छीन लीं। अंग्रेजों और बँटवारे से लाभ कमाने की मंशा पाले विभिन्न राजनीतिक संगठनों ने इन दंगों को बढ़ावा दिया। भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत की तरफ बड़े पैमाने पर शरणार्थियों का विशाल जन सैलाब चल पड़ा। बंगाल को भी दो भागों में बाँट दिया गया। पूर्वी बंगाल नवनिर्मित पाकिस्तान में शामिल हुआ। पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्टों ने बढ़–चढ़कर शरणार्थियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने का काम किया और उनके लिए घर और मताधिकार की माँग की।

कम्युनिस्टों ने बंगाल अकाल के दौरान राहत कार्य किया और 1950 के दशक में भोजन आंदोलन चलाया। भोजन आंदोलन के तहत ग्रामीण गरीब 'भूखों का जुलूस' (भूखा मिछिल) में शामिल होकर कलकत्ता की सड़कों पर उमड़ पड़े। इन सब ने गरीबों को और भी विशाल संख्या में कम्युनिस्ट पार्टी से जोड़ा।

तेभागा आंदोलन के बाद के दौर में भूमि सुधार की माँग आंदोलन की माँगों का हिस्सा बन गई थी। 1950 के दशक के दौरान किसान सभा ने बटाईदारों की उनके खेत से बेदखली के खिलाफ लड़ाईयाँ लड़ीं।

कम्युनिस्टों की बढ़ती शक्ति उनके चुनावी प्रदर्शनों में परिलक्षित हो रही थी। सीपीआई(एम) और सीपीआई 1967–1969 और 1969–1970 के दौरान थोड़े समय के लिए बनी युनाइटेड फ्रंट सरकारों में शामिल थीं। 1977 में वाम मोर्चा, जिसमें सीपीआई(एम), सीपीआई और अन्य वामपंथी पार्टियाँ शामिल थीं, को चुनाव में जीत हासिल हुई और उनकी सरकार बनी। ज्योति बसु मुख्यमंत्री बने। पश्चिम बंगाल में लगातार 34 सालों तक कम्यूनिस्टों की सरकार रही।

संयुक्त मोर्चा की सरकारों के कार्यकाल के दौरान शुरू किए गए भूमि सुधारों को वाम मोर्चा की सरकार ने आगे बढ़ाया। वाम मोर्चा की सरकार ने 'ऑपरेशन बर्गा' लागू किया। इसके तहत बटाईदारों (बर्गादारों) के अधिकारों को लागू किया गया। इससे खेत जोतने वालों को उपज का वाजिब हिस्सा मिलना सुनिश्चित हुआ। अपने हिस्से का उपज लेने के बाद भू–स्वामी को बटाईदार को एक रसीद देनी होती थी जिसको बैंक बटाईदार के जमीन पर अधिकार के सुबूत के रूप में स्वीकार करते थे। एक खास सीमा से ज्यादा स्वामित्व वाली जमीनों को अधिशेष भूमि घोषित करके उसका पुनर्वितरण किया गया।

वाम मोर्चा की सरकार के भूमि सुधार की कार्रवाइयों के स्तर का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भारत के भूमि सुधार कार्यक्रमों के लाभार्थियों में से करीब 50 प्रतिशत केवल पश्चिम बंगाल से थे। भूमि सुधार कार्यक्रमों के तहत 2008 तक 29 लाख से ज़्यादा लोगों को खेती योग्य जमीन दी जा चुकी थी। 15 लाख बटाईदारों की जमीनों को दर्ज किया जा चुका था तथा 5,50,000 से ज्यादा लोगों को घर के लिए जमीन दी जा चुकी थी। खेती योग्य जमीन पाने वाले लोगों में 55 प्रतिशत लोग भारतीय समाज के सबसे गरीब तबकों से ताल्लुक रखने वाले दलित (अछूत) और आदिवासी समुदायों से थे।

पश्चिम बंगाल की कम्युनिस्ट सरकारों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कृषि का पुनरुद्धार था जिससे राज्य में ग्रामीण आजीविका के साधनों का भी पुनरुद्धार हुआ। ग्रामीण विकास, जिसमें सिंचाई भी शामिल है, में सार्वजनिक निवेश का व्यापक स्तर पर विस्तार किया गया। इससे विशाल भू भागों पर जहाँ पहले एक साल में सिर्फ एक फसल उगाई जाती थी, वहाँ साल में दो से तीन फसलों को उगाना संभव हो पाया। इससे किसानों को लाभप्रद निवेश करने का प्रोत्साहन मिला। इन सब नीतियों से पश्चिम बंगाल में कृषि उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हुई और राज्य का शुमार देश के शीर्ष चावल उत्पादकों में हो गया।

वाम मोर्चा की सरकारों द्वारा शुरू किए गए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण पश्चिम बंगाल में व्यापक बदलावों की बुनियाद रखी। पंचायतों (स्थानीय स्वशासी संस्थान) की स्थापना करके उनको स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने का अधिकार दिया गया, जिसमें भूमि सुधारों

को लागू करना भी शामिल था। राज्य सरकार की निधि का एक बड़ा हिस्सा पंचायतों को दिया गया। इन सुधारों ने गाँवों में वर्ग शक्ति का संतुलन किसानों के पक्ष में कर दिया। इससे बड़े भूस्वामियों, पुराने जमींदारों और साहूकारों का दबदबा काफी कम हुआ। दलित और आदिवासी पंचायत प्रतिनिधियों का अनुपात उनकी जनसंख्या में भागीदारी से भी ज्यादा बढ़ गया।

कम्युनिस्ट नेता ज्योति बसु (सामने की पंक्ति में बाईं ओर से छठे स्थान पर्य बिना चश्मे के), जो बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बने, 1959 के खाद्य आंदोलन भूखा मिचिल (भूखों का जुलूस,) में भाग लेते हुए।

गणशक्ति।

त्रिपुरा

त्रिपुरा में 1948 में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में गणमुक्ति परिषद की स्थापना हुई। इसने आदिवासी लोगों से जुड़े हुए जरूरी मुद्दों, जैसे आदिवासियों से कराई जाने वाली जबरिया मजदूरी की समाप्ति, और सूदखोरी को खत्म करने के लिए संघर्षों की अगुवाई की।

आजादी के बाद हुए बँटवारे के बाद त्रिपुरा में पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान में बांग्लादेश) से शरणार्थियों का सैलाब उमड़ पड़ा। पूर्वी पाकिस्तान में राजनीतिक अस्थिरता और सांप्रदायिक तनावों की वजह से यह प्रवास 1950 और 1960 के दशकों में भी जारी रहा। इस प्रवास से आदिवासी लोगों और उनकी जमीनों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। वाम मोर्चा की सरकार बनने से पहले राज्य का प्रशासन शरणार्थियों के प्रति संवेदनहीन था। 1950 और 1960 के दशक में गणमुक्ति परिषद और कम्युनिस्टों ने राजनीतिक आंदोलन चलाकर कई माँगों को उठाया: आदिवासी जमीनों की सुरक्षा, शरणार्थियों का उचित पुनर्वास, और आदिवासी बटाईदारों की बेदखली की समाप्ति। आदिवासी तथा गैर–आदिवासी लोगों के साझा संघर्षों ने उनके बीच एकता स्थापित किया।

त्रिपुरा में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेतृत्व में पहली बार सन् 1978 में सरकार बनी। नृपेन चक्रवर्ती मुख्यमंत्री बने। वाम मोर्चा की सरकार ने सरकार बनाते ही बहुत सारे कदम उठाए। इनमें भूमि सुधार, जिनका मकसद आदिवासी जमीनों के अवैध हस्तांतरण को रोकना था, आदिवासी जमीनों की वापसी, भूमि सुधार विधेयक 1979 में संशोधन करके बटाईदारों के अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित करना, तथा भूमिहीन और गरीब किसानों के बीच भूमि का पुनर्वितरण शामिल था। स्वायत्त जिला समिति विधेयक (Autonomous District Council, ADC) – जिसका उद्देश्य लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण तथा आदिवासी लोगों को क्षेत्रीय स्वायत्तता प्रदान करना था – को 1979 में पारित किया गया। आदिवासी भाषा कोकबोरोक को राज्य की राजकीय भाषाओं की सूची में शामिल किया गया।

त्रिपुरा में 1980 के दशक के शुरू में अलगाववादी विद्रोह से जुड़ी हुई हिंसक गतिविधियों की शुरुआत हो गई। यह हिंसक विद्रोह 1990 के दशक से लेकर 2000 के दशक के मध्य तक जारी रहा। 2000 के दशक के मध्य तक इस विद्रोह के कारण उत्पन्न हुई जान–माल की असुरक्षा की स्थिति राज्य के सामने एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। हालाँकि 2000 के दशक के अंत तक वाम मोर्चा की सरकार के बहु–आयामी रवैये की वजह से अलगाववादी हिंसा से जुड़ी हुई घटनाओं में भारी कमी देखने को मिली। आम राजनीतिक अभियान, जवाबी कारवाई और आदिवासी इलाकों में कराए गए विकास कार्य जैसे कदम उठाने की वजह से ऐसा संभव हुआ।

शांति स्थापित होने के बाद विकास कार्य फिर से शुरू हो गए। त्रिपुरा में साक्षरता, स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रति व्यक्ति आय और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में व्यापक सुधार देखने को मिला। आदिवासी लोगों के अधिकारों की सुरक्षा और वर्ग के आधार पर आदिवासी तथा गैर–आदिवासी लोगों के बीच कयम एकता त्रिपुरा के कम्युनिस्ट और जनवादी आंदोलन की खास उपलब्धि है।

त्रिपुरा में वाम मोर्चा 1978 से लेकर 1988 तक सत्ता में रही। वाम मोर्चा दोबारा 1993 से लेकर 2018 तक सत्ता में रही। 2018 के विधानसभा चुनावों में इसे हार का सामना करना पड़ा। राज्य को मिलने वाले निवेश का बहिष्कार होने और केंद्र सरकार की नवउदारवादी नीतियों के बोझ को ढोने के साथ–साथ मध्यम वर्ग की आकांक्षाओं को पूरा करना मुश्किल होता जा रहा था। वहीं दूसरी तरफ, धुर–दक्षिणपंथी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) सोशल मीडिया और अन्य माध्यमों से गलत सूचनाओं का प्रसार करने के लिए त्रिपुरा में भारी मात्रा में पैसे बहा रही थी। दक्षिणपंथी शक्तियाँ कम्युनिस्टों के ऊपर हिंसक हमले कर रही थीं। चुनावी हार के बावजूद त्रिपुरा में कम्युनिस्ट पूरी मजबूती के साथ खड़े हैं और भाजपा के दमन के खिलाफ लड़ रहे हैं।

नवउदारवादी युग

हालाँकि बड़े पूँजीपतियों की बढ़ती शक्ति और देश का नवउदारवादी रास्ते की तरफ अग्रसर होना पहले ही साफ हो चुका था, लेकिन भारत ने औपचारिक रूप से नवउदारवादी युग में प्रवेश सन् 1991 में किया। सरकार की सार्वजनिक उद्योगों को बेचने, कम कीमत पर सार्वजनिक संपत्ति को बेचने और श्रम कानूनों को कमजोर करने की कोशिशों के खिलाफ कम्यूनिस्टों ने जी जान से लड़ा. ई लड़ी। सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत पूँजीवाद के एक बेहद आक्रामक रूप की तरफ बढ़ने लगा। नवउदारवाद के साथ–ही–साथ भारत को एक हिंदू राष्ट्र में बदलने की मंशा रखने वाले मतांध दक्षिणपंथी राजनीतिक ताकतों का भी उदय हुआ। इन ताकतों को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) संचालित करता है। भाजपा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मुख्य राजनीतिक–चुनावी अंग है। भाजपा के अलावा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध अनेक संगठन हैं।

1990 के दशक के आखिरी दौर में कम्युनिस्ट पार्टियों ने राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय दलों के दबदबे वाली दो अल्पकालिक सरकारों को समर्थन दिया। आजादी के बाद राष्ट्रीय राजनीति पर कम्युनिस्ट प्रभाव अपने शिखर पर 2004–2007 के दौरान पहुँचा। यह तब हुआ जब भाजपा को सत्ता से दूर रखने के लिए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, और दो अन्य वाम दलों, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी और ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक ने कांग्रेस के नेतृत्व वाली गठबंधन की सरकार का समर्थन किया। इस दौरान कामगार वर्ग के लोगों को राहत प्रदान करने के लिए बहुत सारे कदम उठाए गए। इन कदमों में ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, सूचना का अधिकार अधिनियम (इससे शासन में पारदर्शिता बढ़ी), और वन अधिकार अधिनियम (इसका उद्देश्य जनजातियों और जंगलों में निवास करने वाले अन्य लोगों के जमीन और दूसरे संसाधनों पर अधिकार को सुनिश्चित करना था) शामिल थे। लेकिन सरकार नवउदारवादी नीतियों का अनुसरण करती रही और आखिरकार 2008 में भारत द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ आण्विक समझौते पर हस्ताक्षर करके संयुक्त राज्य अमेरिकी साम्राज्यवाद से नजदीकियाँ बढ़ाने के कारण वाम दलों ने अपना समर्थन वापस ले लिया।

सबसे महत्वपूर्ण मोड़ 2007 में पश्चिम बंगाल में आया। 2006 के विधानसभा चुनाव में वाम मोर्चे को भारी बहुमत से विजय मिली थी। लेकिन अर्थव्यवस्था पर नवउदारवाद के बढ़ते प्रभुत्व के कारण राज्य अपनी स्वायत्तता खोते जा रहे थे। राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही थी। जो राज्य श्रम कानूनों का बचाव कर रहे थे उन राज्यों को तुलनात्मक रूप से कम निवेश मिल रहे थे। केंद्र में एक के बाद एक आनेवाली सरकारों ने सार्वजनिक निवेश के मामले में पश्चिम बंगाल के साथ भेदभाव किया। निजी और विदेशी निवेश का प्रवाह उन राज्यों तक सीमित था जो उद्योगों को करों में भारी रियायत और श्रम कानूनों से छूट दे रहे थे। नीचे से नीचे गिरते जाने के इस रेस में पश्चिम बंगाल को सबसे ज़्यादा नुकसान उठाना पड़ा। भूमि सुधारों से आई विकास दर में तेजी सुस्त पड़ती जा रही थी और राज्य को दूसरे विकल्पों की बहुत जरूरत थी।

वाम मोर्चा की सरकार ने निजी निवेश को आकर्षित करने का प्रयास किया। लेकिन औद्योगीकरण के लिए किसानों से जमीन अधिगृहित करने के सरकारी प्रयास विवादों में घिर गए। यह विवाद सरकार के लिए संकट का कारण बन गया। इस विवाद का फायदा उठाकर विपक्ष ने किसानों को भड़काकर वाम मोर्चा की सरकार के खिलाफ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप 2011 के विधानसभा चुनाव में कम्युनिस्टों को शिकस्त का सामना करना पड़ा। इस हार के बाद दक्षिणपंथ के द्वारा हिंसा और आतंक का पुरजोर अभियान छेड़ा गया जोकि बाद के सालों में भी कायम रहा कम्युनिस्ट पार्टी और अन्य वाम दलों के 250 से ज्यादा कार्यकर्ताओं और समर्थकों की हत्या की गई। वाम दलों के हजारों समर्थकों को उनके घरों और गाँवों से भगा दिया गया।

इसके बावजूद बंगाल और देश के दूसरे हिस्सों में कम्युनिस्टों की अगुवाई में संघर्षों की मशाल बदस्तूर जल रही है। लगातार असंगठित होते और ठेका पर मजदूरी करने पर विवश शहरी मजदूरों को संगठित करने के लिए कम्युनिस्ट दुगूनी ताकत से काम कर रहे हैं। सरकारी योजनाओं और कपड़ा कारखानों जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में उन्हें महिला कामगारों को संगठित करने में विशेष सफलता हासिल हुई है। घरेलू महिला कामगारों और खेतिहर मजदूरों को संगठित करने के प्रयास हकीकत में तब्दील हो रहे हैं। स्थायी कार्यस्थल नहीं होने और घर से किए जाने वाले कामों की अधिकता कम्युनिस्टों के लिए मजदूरों को संगठित करने की राह में चुनौती

बनकर उभरी है। इन विषम परिस्थितियों में भी कम्युनिस्टों ने मजदूरों को लामबंद करके सफल कार्रवाईयों को अंजाम दिया है।

हालिया दशकों में बढ़ते जाति आधारित भेदभाव और जाति व्यवस्था के हिंसक स्वरूप के खिलाफ लड़ी गई लड़ाईयाँ इन संघर्षों का प्रमुख हिस्सा रही हैं। कम्युनिस्टों ने भारत में आंदोलन के पनपने के साथ ही जाति आधारित शोषण के खिलाफ लड़ाई का बिगुल फूँक दिया था और ये लड़ाई अब भी जारी है। भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए यह सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए 1990 के दशक के बाद से कम्युनिस्टों के नेतृत्व में कई मंचों की स्थापना की गई। ये मंच अमानवीय सामाजिक प्रथाओं की समाप्ति, शोषित जातियों के लिए भूमि के अधिकार, और शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक कार्रवाई तथा वंचित तबकों के लिए रोजगार सुनिश्चित करने के लिए लड़ाईयाँ लड़ते रहे हैं। जातिगत दमन और जातिगत हिंसा के खिलाफ, महिलाओं के ऊपर होने वाले हिंसा के खिलाफ और सभी उत्पीड़ित तबकों की मुक्ति के लिए चलने वाले संघर्षों के लिए जितना ज्यादा व्यापक मोर्चा हो सकता है कम्युनिस्ट उतना व्यापक मोर्चा बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

महिलाओं ने मजदूर और किसान आंदोलनों में भाग लेकर और नेतृत्व प्रदान करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा वाम–जनवादी महिला आंदोलनों ने महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार और तलाक का अधिकार जैसे नागरिकों के अधिकार सुनिश्चित करने वाले कानूनों को बनाने के लिए लड़ी गई अनेक लड़ाईयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लैंगिक हिंसा के खिलाफ किए गए आंदोलनों ने बलात्कार विरोधी कानूनों में महत्वपूर्ण संशोधनों के लिए जमीन तैयार किया है। जातिगत अत्याचारों और परिवार तथा समाज की प्रतिष्ठा के नाम पर होने वाली औरतों की हत्याओं (जाति प्रथा से हटकर विवाह करने या सम्बंध रखने पर की जाने वाली महिलाओं की हत्याएँ) के खिलाफ हालिया दशकों में उल्लेखनीय लड़ाईयाँ लड़ी गई हैं। खासकर हरियाणा राज्य में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति (All India Democratic Women's Association) ने इन कुरीतियों के खिलाफ बखूबी संघर्ष किया है।

हिंदुत्ववादी ताकतों (हिंदू धर्म का दक्षिणपंथी राजनीतिक प्रारूप हिंदुत्व है) के उदय और बढ़ती सांप्रदायिकता ने कम्युनिस्टों के नेतृत्व में लोगों की मुक्ति के लिए चलाए जा रहे संघर्षों के लिए गंभीर चुनौतियाँ पेश की हैं तथा कामगार वर्ग के आंदोलनों में दरारें डाली हैं। आर.एस.एस., भाजपा और अन्य फासीवादी संगठनों ने नवउदारवादी नीतियों की वजह से हिंदू कामगार वर्ग में बढ़ते असंतोष को हिंसक सांप्रदायिक जहर में तब्दील किया है। कम्युनिस्ट अकेले भी इस लड़ाई में चट्टान की तरह अड़े रहे हैं। अनेक राजनीतिक दलों ने हिंसक हिंदुत्ववादी फासीवादियों का सामना करने के बजाये उनके सामने घुटने टेक दिए हैं। लेकिन भारत के अल्पसंख्यकों की जान और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए अन्य धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील ताकतों के साथ मिलकर कम्युनिस्ट पहली पंक्ति में रहकर लड़ते रहे हैं।

नव उदारवादी युग में संयुक्त राज्य अमेरिकी साम्राज्यवाद और भारतीय बुर्जुआ वर्ग ने पहचान के आधार पर की जाने वाली राजनीति के नाम पर बहुत सारे राजनेताओं तथा किसी एक समस्या को आधार बनाकर काम करने वाले गैर–सरकारी संगठनों को अपने वश में कर लिया है। इसके बावजूद भारतीय कम्युनिस्ट हर न्यायसंगत संघर्ष में जी जान से लड़ रहे हैं। बढ़ते सरकारी दमन से बहुतों का प्रतिरोध कमजोर हो गया है या फिर उनकी आवाजें दबा दी गई हैं, लेकिन कम्युनिस्ट अब भी संघर्ष की राहों पर डटे हुए हैं। कम्युनिस्ट आंदोलन इस बात से भली–भाँति वाकिफ है कि आने वाले संघर्ष कठिन होने वाले हैं और उनका सामना उम्मीद और हिम्मत से लबरेज होकर करना होगा।

इस वर्ष अपने 100 साल पूरे करने वाला भारतीय कम्युनिज़्म (भारतीय साम्यवाद) एक अधूरी परियोजना है। यह तरल और निरंतर गतिशील है। नवउदारवाद के उदय ने इसे कमजोर किया है। लेकिन इसे अपनी सीमाओं और अवसरों का ज्ञान है। समस्याओं और संभावनाओं की ईमानदार पड़ताल करके, विद्वेष और कटु भावनाओं से बचकर ही आगे बेहतर रास्ते पर चला जा सकता था। भारत के लोगों को इस बेहतर रास्ते की सख्त जरूरत है। इसके अलावा कुछ भी बहुत क्रूर होगा।

राजस्थान के सीकर में किसानों ने 3 सितंबर 2017 को अखिल भारतीय किसान सभा के नेतृत्व में राजस्थान राज्य की भाजपा सरकार का झूठा अंतिम संस्कार किया।

अखिल भारतीय किसान सभा।

NOTES

NOTES

Tricontinental: Institute for Social Research
is an international, movement-driven institution
focused on stimulating intellectual debate that
serves people's aspirations.
www.thetricontinental.org

Instituto Tricontinental de Investigación
Social es una institución promovida por los
movimientos, dedicada a estimular el debate
intelectual al servicio de las aspiraciones del
pueblo.
www.eltricontinental.org

Instituto Tricontinental de Pesquisa Social
é uma instituição internacional, organizado por
movimentos, com foco em estimular o debate
intelectual para o serviço das aspirações do povo.
www.otricontinental.org